विचार की एक घूंट

1985 में तत्कालीन सोवियत संघ के राष्ट्रतपति मिखाईल गोर्वाचोव ने शराबबंदी अभियान चलाया था। गोर्बाचोव की जीवनी लिखने वाले विलियम ट्रवमैन बताते हैं कि 'गोर्बाचोव के इस अभियान ने पोलित ब्यूरो रिपोर्ट का अनुसरण किया था। इस रिपोर्ट में अत्यगधिक शराब का सेवन करने के घातक परिणामों के बारे में चिंता व्ययक्ति की गई थी।' शराब विरोधी अभियान से बढ़ते अपराध तो कम हो गए, जीवन प्रत्यायशा बढ़ गई, परन्तु यह राजनीतिक और आर्थिक जगत में एक संकट सिध्दक हुआ। राज्यों के वित्तीय घाटे ने आर्थिक संकट पैदा कर दिया था। इतिहासकारों का यह मानना है कि गोर्बाचोव काल के पतन का यह बहुत बड़ा कारण था।

भारत में लॉकडाउन में दी गई ढील के साथ शराब की बिक्री पर छूट से उत्पन्ना सामाजिक गड़बड़ी हमें याद दिलाती है कि भारत में शराब पर तर्कसंगत रूप से चर्चा करना कितना मुश्किल काम है। दूसरे, अगर आप चालीस दिन की बंदी के बादए भविष्य की नीति की घोषणा किए बगैर शराब पर छूट देंगे, तो भगदड़ तो मचनी ही थी। रशिया की तरह भारतीय राज्यों के लिए भी शराब-बिक्री , राजस्व का ठोस साधन है। इससे न केवल राज्यों के कोष भरते हैं, बल्कि पूरी राजनीतिक मशीनरी प्रभावित होती है। इस बात का भी डर है कि इस विषय पर बात करने वालों का निषेध हो सकता है। शराब, अब व्यतक्तिगत स्वभतंत्रता और रूचि का विषय न रहकर प्रगतिवाद को मापने के मानदंडों पर विस्थापपित हो चुका है। इससे यह भी संकेत मिलते हैं कि उदारवाद को कैसे गलत अर्थों में लिया गया है।

उदारवादियों को, नैतिक और व्यारवहारिक आधारों पर निषेध का अधिकार होना चाहिए। जब सरकार अपने नागरिकों के उनकी इच्छा से जीने के अधिकार में हस्तधक्षेप करने लगती है, तो वह अपनी वैध शक्ति की सीमाओं से आगे निकल जाती है। यह स्पिष्ट रूप से से कहा जा सकता है कि शराब पर नैतिकता या शुध्दीता की दलील राज्य की नीति का आधार नहीं हो सकती। इस नैतिकता का कोई आधार नहीं है, और यह नागरिकों की व्यपक्तिगत गरिमा और स्वोतंत्रता का उल्लंघन करता है।

ऐसा किया जाना उदारवाद के विरोधाभासों में से एक है। उदारवादी स्वंतंत्रता के फलने-फूलने के लिए समाज को अधिक आत्म-संयम और निर्णय-शक्ति की आवश्यिकता होती है। अतरू यदि अभिव्यक्ति की किसी स्वातंत्रता के तहत पनपने वाले सामाजिक मानंदड का दुरूपयोग घृणा या दूसरों को अधीन करने के लिए एक कवर के रूप में किया जाता रहा, तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बच नहीं पाएगी या अपेक्षाकृत व्यर्थ हो जाएगी। राज्यय को किसी की अंतरंगता और यौनाचार के मामलों में भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अगर यौनाचार की अभिव्यक्ति अधिक हिंसक और पतित होती गयी, तो स्वतंत्रता की हमें एक बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। लोगों के मद्यपान के अधिकार में सरकार को हस्त क्षेप नहीं करना चाहिए। लेकिन संकट वहां खड़ा हो सकता है, जहॉ मद्यपान सामाजिक हानि का कारण बन जाए। उदारवाद के लिए सरकारी शक्ति की सीमाओं को परिभाषित करना बहुत आसान होता है। लेकिन कठिनाई तो स्वतंत्रता और संयम दोनों को एक साथ समझने की है। दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं।

भारत में मद्यपान का निषेध किए जाने का कोई औचित्या नहीं है। इस विकल्पत को संरक्षित किया जाना चाहिए। परन्तुन मद्यपान से कुछ गंभीर सामाजिक समस्या खड़ी हो जाती हैं। विश्वि स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व् में 5.3 फीसदी मौत शराब से जुड़ी हुई हैं। 20 से 39 वर्ष आयु वर्ग में यह 13 फीसदी और बढ़ जाती है। शराब के साथ जुड़ी यौन हिंसा और घरेलू हिंसा के विश्व-आंकड़े चौंकाने वाले कहे जा सकते हैं। इस मामले में बिहार की महिलाओं का शराबबंदी का समर्थन करने का तरीका सामाजिक दृष्टि से बिल्कुल सही है, चाहे हम उससे सहमत हों या नहीं।

अभिजात वर्ग के संदर्भ में मद्यपान व्यीक्तिगत रूचि से संबंधित नहीं है। यह अपने आप में एक विचारधारा बन गई है। यह समाज में प्रगतिवाद का रूपक बन गया है। युवा वर्ग में तो यह पसंद या नापसंद का नहीं, बल्कि समूह में शामिल होने की अनिवार्यता बन गया है। इसको एक विचारधारा बनाकर चलने वालों के भी अपने अजीबोगरीब तर्क होते हैं। कुछ रूढ़िवादी तो इस बारे में भी नैतिकता का पालन करते हैं।

लोगों के जो भी तर्क हों, परन्तु इनमें से कोई भी प्रतिबंध का समर्थक नहीं है। फिर भी हमें इससे जुड़ी सामान्यी सोच पर इतना विराम अवश्य लगाने का प्रयत्न करना चाहिए कि समाज का कम-से-कम नुकसान हो। मद्यपान में संयम बरतने की शिक्षा देना, सामुदायिक हस्त क्षेप, शराब की दुकानों के घनत्व को नियमित करना, विज्ञापनों को नियंत्रित करना, विषय पर खुली चर्चा करना आदि कुछ चुनौतियां हैं, जिन पर काम किया जाना चाहिए। अच्छे उदारवादी अपनी रूचि की स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं। परन्तु अगर हम सचमुच स्वतंत्रता की परवाह और रक्षा करना चाहते हैं , तो हमें शराब से जुड़ी सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक अर्थव्यावस्था के प्रति हमारे व्यसन पर प्रश्न उठाना चाहिए। इसके बाद इस जटिल समस्या के लिए उचित मार्ग ढूंढना चाहिए।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित प्रताप भानू मेहता के लेख पर आधारित। 7 मई 2020